INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 8.031 (SJIF 2025)

"दलित आत्मकथाओं में चित्रित सामाजिक चेतना"

(Social Consciousness depicted in Dalit Autobiographies)

प्रा. माधुरी संजय शिंदे (चव्हाण)
सहायक प्राध्यापक,
महावीर महाविद्यालय,
कोल्हापुर (महाराष्ट्र, भारत)
E-mail: madhurishinde90823@gmail.com

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/12.2025-35361263/IRJHIS2512011

सारांश *:*

दलित आत्मकथा साहित्य बस साहित्य नहीं बल्कि समाज की कुप्रथाओं का आईना दिखाने वाला सशक्त माध्यम है। दलितों का संघर्षमयी जीवन, उनकी समस्याओं को, उत्पीड़न, शोषण को समाज के सामने लाने का काम दलित आत्मकथाएँ करती हैं। यह बस आत्मकथाएँ नहीं समाज की विषमताओं को उजागर करने वाले दस्तावेज हैं; जो दलित समाज को न्याय दिलाने के लिए चिखते हैं। न्याय की, समानता की, अपेक्षा करते हैं। दलित समाज के व्यक्तियों की भावनाएँ, उनकी आकांक्षाओं को कैसे कुचला जाता है, उनके जीवन से कैसे खिलवाड़ किया जाता है इसका जीवंत उदाहरण देती है | यह एक ऐसी क्रांतिकारी धारा है, जिसमें समाज के निचले तबके में दबाएँ गए, कुचले गए समाज को मुक्ति का स्वर दिया। यह एक सामूहिक लड़ाई है, जो इस समाज में व्याप्त कुप्रथाओं से मुक्ति का आवाहन करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की- 'जूठन', मोहनदास नैमिशराय की – 'अपने-अपने पिंजरे में', कौशल्या बैसंत्री की – 'दोहरा अभिशाप', तुलसीराम की- 'मुर्दहिया' ऐसी एक नहीं कितनी सारी आत्मकथाएँ हैं, जिसमें लेखक अपनी आपबीती की सहारे दलित समाज के प्रति अन्याय का, अत्याचार का विरोध करती है। जिस समाज ने सदियों से मौन रखा, जो हो रहा है उसे चुपचाप सहन कर लिया ,उस समाज में 20 वीं सदी में एक क्रांति की ज्योत जगी। अपने ऊपर हो रहे अन्याय को समाज के सामने लाने का एक सशक्त माध्यम उन्हें मिला | हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का उदय हुआ ,जिसमें इस समाज के ऊपर प्रथाओं के नामपर जो अन्यायपूरक रीति रिवाजों को लाद दिया गया था, उसके खिलाफ आवाज उठाने की जंग छेड़ दी थी। यह जंग साहित्यात्मक थी जिसके अंतर्गत अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में जनजागृति करने का प्रयास किया गया।

बीज शब्द *: दलित, अस्पृश्य, सामाजिक, चेतना, आत्मकथा*

प्रस्तावना :

दलित आत्मकथा साहित्य बस एक करुण गान नहीं है, बल्कि वह एक ऐसा साहित्य है; जो दलितों के उत्पीड़न, शोषण को उजागर कर उनके न्याय के लिए लड़ता है। और इतने अन्याय, अत्याचार के बावजूद समाज के लिए कैसे अमूल्य काम किए गए वह बताता है। जैसे डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का कार्य पूरे देश में परिवर्तन लेकर आ गया। दलित आत्मकथा साहित्य

केवल एक व्यक्ति की समस्याओं को उजागर नहीं करता बल्कि समाज में व्याप्त भेदभाव, शोषण का विरोध करता है। समाज की झूठीप्रथा, परंपराओं को वह नकार देता है। जो एक इंसान का इंसानहोने का अधिकार छीन लेता है। जहा जानवरों को भी थोड़ी बहुत इज्जत मिलती है, प्यार मिलता है, वहां बस जाति के नाम पर किसी मनुष्य को प्रताड़ित करना इंसानियत के नाम पर एक धब्बा है। भगवान ने जब सबको एक जैसा बनाया है, कोई भेदभाव नहीं किया तो उन्हें बस जाति के नाम पर प्रताड़ित कर समाज से अलग करना कितना तर्कसंगत है। यह भावना अत्यंत गलत और असामाजिक है। इन सारी बातों को दिखाने और समाज की आंखें खोलने का काम यह आत्मकथाएँ करती हैं। सही मायने में दलित आत्मकथाएँ हमेशा समाज सुधार के कार्य में अग्रसर रही हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में दलित साहित्य लेखन का उगम सामाजिक परिवर्तन का एक नया पन्ना है। जिसने बस समाज की स्थितियों का सटीक वर्णन नहीं किया बल्कि उसमें परिवर्तन लाने की एक अलग प्रेरणा दी। इसलिए दलित आत्मकथाओं का सामाजिक चेतना में एक अलग स्थान है।

शोध विषय का विश्लेषण :

'दलित' क्या अर्थ है इसका ? अछूत या समाज के हाशिये में पड़ा एक समूह, समाज से बिछड़ा हुआ। लेकिन क्यों ? वह तो खुद अपने समाज से अलग नहीं हुआ होगा ना, यह तो हमारे समाज के एक विचित्र और अतांत्रिक परंपरा है जो मनुष्य, का मनुष्य होने का अधिकार छीन लेती है, बस जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था के नाम पर। इतिहास के लंबे से लंबे कालखंड को देखा जाए तो समझ आता है कि, दलित समाज को कैसे अन्याय अत्याचार का सामना करना पड़ा। हमारे समाज की संरचना ही हमेशा से अन्यायपूर्ण रही है। जिससे दलित समुदाय को अस्पृश्यता का सामना बी करना पड़ा। बिसवीं सदी तक आते-आते इस समाज ने इसे अपना नसीब या भाग्य ही मान लिया था, और समाज की इस व्यवस्था का स्वीकार कर लिया था। लेकिन 20 वीं शताब्दी के कुछ लेखकों ने स्वयं अपने अनुभवों को व्यक्त किया। उन पर जो गुजरी जिस अन्याय, उत्पीड़न का उन्हें सामना करना पड़ा, उसपर आवाज उठाने की कोशिश की। किसी भगवान ने नहीं तो इस समाज द्वारा लिखे उनके इस भाग्य का उन्होंने अस्वीकार किया। इसमें सबसे ऊपर नाम आता है डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का, जिन्होंने समाज की रचित सारी सीमाओं को लांघकर बस अपना ही नहीं पूरे देश का भविष्य लिखा, जिसे हम संविधान के नाम से जानते हैं। अगर डॉ . बाबासाहेब आंबेडकर जी ने इस अन्याय, अत्याचार को अपना नसीब समझकर स्वीकार किया होता तो, इतिहास का यह पन्ना कभी नहीं पलटता। इतिहास का एक पन्ना ही नहीं बल्कि उन्होंने पूरे इतिहास को ही बदल दिया। सबसे पहले एक दलित व्यक्ति द्वारा अपनी आत्मकथा लिखने पर अन्य लेखकों को भी उनसे प्रेरणा मिली और उन्होंने भी अपने आपबीती, खुद पर हुए अन्याय , अत्याचार को अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से वाणी दी। यह आत्मकथाएँ बस उन पर बीती बातों का ब्योरा नहीं है बल्कि समाज में स्थित हर एक वह व्यक्ति, हर जाति हर वर्ण की स्थिति को हमारे सामने एक आईने की तरह खड़ी करती है। यह साहित्य इस जाति का संघर्ष, उनकी व्यथा, समाज की क्रूरता, अपमान, शोषण, जातिगत असमानता, जीवनयापन करते समय का संघर्ष, शिक्षा का संघर्ष, नारी शोषण आदि एक नहीं अनेक समस्याओं को हमारे सामने लाकर रखती है। अगर समाज के हर एक व्यक्ति को अपना जीवन सहज, सरल जीने का अधिकार है; तो दलित समाज पर यह अन्याय क्यों ? उनसे सहज सामान्य जीवन जीने का उनका यह अधिकार क्यों छिन लिया

जाता है। उन्हें भी अपने जीवन का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शिक्षा का अधिकार है। समाज के अन्य जातियों की तरह उन्हें भी अपना जीवन जीने का अधिकार है। यही सारी बातें दलित आत्मकथाओं के द्वारा हमारे सामने लाने की कोशिश तत्कालीन लेखकों ने की है। समाज में व्याप्त इन कुप्रथाओं को मिटाकर नई रोशनी फ़ैलाने का कार्य दलित आत्मकथाओं ने किया।

दलित आत्मकथाएँ हिंदी साहित्य का एक क्रांतिपूर्णपड़ाव था। जिसमें किसी एक व्यक्ति की कथा नहीं, तो पूरे दलित समाज की संघर्ष गाथा है। इन लेखकों ने अपने आत्मकथा साहित्य द्वारा सदियों से पीड़ित उपेक्षित दबे हुए समाज को, अपमानित वर्ग की पीड़ा को एक नई चेतना दी। इन कुप्रथाओं को एक प्रतिरोधी स्वर दिया। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन', जिसमें बताया गया है कि कैसे उनके बचपन में पढ़ाई की जगह साफ-सफाई करने के लिए मजबूर किया जाता था। उन्हें स्कूल में बैठने की इजाजत नहीं थी। मोहनदास नैमिशराय जी ने 'अपने-अपने पिंजरे' मे इस आत्मकथा में जातिगत बंधनों और उनके आत्मसम्मान पर लगाई गई चोट को चित्रित किया है।शौराजसिंह बेचैन जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में , उनके बचपन में कैसे उन्हें भूख और गरीबी का सामना करना पड़ा यह दिखाया है। पेट की भूक मिटाने के लिए बचपन में ही परिवार की जिम्मेदारियाँ उठानी पड़ी इसका वर्णन किया है। सूरजपाल चौहान जी ने अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' और 'संतप्त' में अपने परिवार का संघर्ष चित्रित किया है। उनका परिवार सर पर मैला उठाने का काम करता था, जिससे उनके परिवार का गुजारा होता था। उनकी माता का देहांत उनके बचपन में ही हुआ था जिससे बचपन मे ही उन्हें बहोत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ा। जो खाना कुत्तों को डाला जाता था, ऐसा खाना उन्हें पेट की आग बुझाने के लिए खाना पड़ता था। ऐसे एक या दो नहीं तो बल्कि बहुत सारी हिंदी आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में अपने आपबीती ही नहीं, तो समाज में व्याप्त संपूर्णव्यवस्था को उजागर करने का प्रयास किया। जिसमें कौशल्या बैसंत्री का- 'दोहरा अभिशाप', माताप्रसाद का 'झोपड़ी से राजभवन तक', रूप नारायण सोनकर का – 'नागफनी', श्योराजसिंह बैचेन का – 'बेवक्त गुजर गया माली', धर्मवीर भारती का- 'मेरी पत्नी और भेड़िया' , 'खसम खुशी क्यों होय', तुलसीराम का- 'मुर्दहिया' (भाग-1), 'मणिकर्णिका' (भाग -2), सुशीला टाकभौरे का- ' शिकंजे का दर्द' , मराठी से अनुवादित की गई आत्मकथाएँ - दया पवार की 'अछूत',शरण कुमार निंबाले का- 'अक्करमाशी' आदि।

दलित आत्मकथाओं के माध्यम से लेखकों ने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर सामाजिक विसंगतियों पर सवाल खड़ा किया है। दलित आत्मकथा लेखन का मुख्य उद्देश्य दलित साहित्य को सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखना था। कुछ प्रमुख आत्मकथाओं में इस अन्याय-अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, प्रतिरोध तथा असमानता की भावनाओं का विश्लेषण करना मुख्य उद्देश्य रहा है। इन आत्मकथाओं द्वारा दलित स्त्री की स्थिति, बालकों का बचपन, उनकी शिक्षा, संस्कृति का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत होता है। उन पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ प्रतिरोध की भावना निर्माण करना, आत्मगौरव, आत्मसम्मान जगाने का कार्य यह आत्मकथाएँ करती है।इस लेखन कार्य द्वारा दलितों को उनकी शिक्षा से उनकी मुक्ति की उद्घोषणा की गई। इस विडंबना पूर्ण समाज व्यवस्था को नकारा गया। इस समाज के भीतर सभी मनुष्यों को एकसमान जीवन व्यतीत करने का अधिकार मिलना चाहिए, इसका जागरण दलित आत्मकथाओं द्वारा किया गया। लगभग सभी आत्मकथाओं में शिक्षा को दलितों के मुक्ति

का मार्ग बताया गया है। जिससे युवकों में अपने अधिकारों और कर्तव्यों की जागृति निर्माण हुई। जिससे कुछ नया कर गुजरने का जोश उनमे निर्माण हुआ।

दलित आत्मकथाओं में शिक्षा के साथ-साथ स्त्री चेतना को भी महत्व दिया गया, क्योंकि इस समाज व्यवस्था के होते दलित स्त्रियों की हालत बड़ी खराब थी। अछूत होने से उनसे सारे घर के काम - काज तो करवाए जाते ही थे, ऊपर से उनका लैंगिक शोषण भी किया जाता था। समाज में कहीं पर भी एक दलित स्त्री सुरक्षित नहीं थी। इन आत्मकथाओं के माध्यम से दलित स्त्रियों पर होने वाले अन्याय का विरोध किया जाने लगा। स्त्री चेतना को महत्व दिया जाने लगा। आदिम काल से यह समाज अन्याय सहन करता आया है। अभी समय आ गया था कि इस व्यवस्था का कहीं पर अंत हो जाए। 20 वीं सदी के लेखकों ने इस समाज व्यवस्था की इस झूठी बनी बनाई रेखा को लांघने का प्रयास किया। समाज में व्याप्त इस आडंबर को रोकने के लिए अपने पहले कदम उठाए। इस तरह दलित आत्मकथाओं द्वारा सामाजिक चेतना का उदय हुआ, जिससे समाज में कम से कम जाति व्यवस्था के विरोध में पहल की शुरुआत हो गई। स्वतंत्रता बाद में भले हिंदी दलित साहित्य का उद्भव हुआ हो, फिर भी इस साहित्य का उद्देश्य हमेशा दलित समाज के वास्तविक स्थिति का यथार्थ समाज के सामने लाना था। दलितों के आवाज को अन्य साहित्य के मुख्य धारा में लाना इसका मुख्य उद्देश्य था।

दलित भी एक इंसान है और उसे भी सामान्य जीवन व्यतीत करने का अधिकार है , यह बात युवकों तक पहुँचाकर उनमें स्वाभिमान की भावना जगाना। आत्मसम्मान के लिए लड़ने की प्रेरणा देने का कार्य दलित आत्मकथा साहित्य ने बखूबी निभाया। जिसकी वजह से बहुत सारे लेखकों ने अपने लेखन के माध्यम से दलितों के अंधेरे से भरे जीवन में रोशनी फ़ैलाने का कार्य किया जिसमें डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का घोषवाक्य- "शिक्षा लो, संघर्ष करो, संगठित हो जो जाओ" की बड़ी प्रेरणा रही। दलित साहित्य के द्वारा समाज के कमजोर वर्गों के प्रति सहानुभूति, अन्याय के प्रति जागरूकता की प्रेरणा मिली। समानता का अधिकार, समान मानवीय मूल्य, जाति उत्पीड़न का यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाया गया। इस साहित्य द्वारा मानवाधिकार की मांग की गई। संघर्षशील बनकर विद्रोह करना और परिस्थिति को बदलना, डर के खिलाफ खड़े रहने का साहस इस साहित्य से मिला। इस तरह दलित साहित्य सामाजिक चेतना का एक मुख्य बिंदु रहा।

निष्कर्ष :

समाज के सबसे निचले स्तर पर जिन्हें हमारी व्यवस्था ने रखा है, उनके यथार्थ पर आधारित जो साहित्य है उसे दलित साहित्य कहा जाता है। यह दलित साहित्य बस उनकी पीड़ा और व्यथा को ही नहीं दर्शाता, बल्कि उनका संघर्ष, स्वाभिमान, अपने हक, अधिकारों की लड़ाई की भी कहानी बताता है। हमारे समाज की यह असमानता और अन्यायपूर्ण व्यवस्था को यह साहित्य केंद्र में लाता है। समानता का अधिकार, मानवीय मूल्य, स्वाभिमान का निर्माण जैसे अनेक मूल स्तंभों का आधार दलित साहित्य है। दलित साहित्य सामाजिक चेतना का वह आधार है जिसमें समाज के दलितों पर, अस्पृश्यता, वर्णभेद के आधार पर होने वाले अन्याय का और अशासित उत्पीड़न का अंत करने की पहल की है। जिससे साबित होता है कि दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन का एक मुख्य आधार है।

संदर्भग्रंथसूची:

1. वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'जूठन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2003)
2. तुलसीराम, 'मुर्दहिया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2010)
3. लिंबाले शरणकुमार, 'अक्करमाशी',दिलीपराज प्रकाशन, पुणे(1984)
4. नैमिशराय मोहनदास, 'अपने-अपने पिंजरे में', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2000)
5. बैसंत्री कौशल्या,'दोहरा अभिशाप', परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली (2015)
6. वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'सफाई देवता', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (2008)
7. वैद्य प्रियंका, 'दलित अश्रु', राहुल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली (2011)

International Research Journal of Humanities and Interdisciplinary Studies
IRJHIS